कृष्णभावनाभावित पुरुष नित्य सौख्यामृतसिन्धु में निमज्जित रहता है। दूसरों को भी इस परम सुख की प्राप्ति हो, इसके लिए वह कृष्णतत्त्वज्ञान को-सम्पूर्ण विश्व में प्रचार करने का प्राणपण से प्रयास करता है। कृष्णभावना को प्रसारित करने का प्रयास करने वाला पूर्ण योगी विश्व का सर्वोत्तम परोपकारी है। इससे भी अधिक वह श्रीभगवान् का प्राणाधिक परम प्रेमास्पद सेवक है। **न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।** भाव यह है कि भगवद्भक्त जीवमात्र का कल्याण करने में निरन्तर लीन रहता है, इस कारण वह सब का सुहृद् है। उसे सर्वोत्तम योगी कहा गया है, क्योंकि वह योग की सिद्धि स्वार्थलाभ के लिए नहीं चाहता, अपितु निरन्तर अन्य प्राणियों के कल्याण के लिए उद्यत रहता है। वह किसी प्राणी से भी ईर्ष्या नहीं करता। शुद्ध भगवद्भक्त और स्वार्थसिद्धि की कामना वाले योगी में यह महान् अन्तर है। एकान्त में ध्यान लगाने वाला योगी उस भक्त के समान कभी सफल नहीं हो सकता, जो मनुष्यमात्र को कृष्णभावनाभावित बनाने के उद्देश्य से यथाशक्ति प्राणपण से पूर्ण प्रयास करता है।

**अर्जुन उवाच।**
**योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।**
**एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्।।३३।।**

**अर्जुनः उवाच**=अर्जुन ने कहा; **यः**=जो; **अयम्**=यह; **योगः**=योग; **त्वया**=आपके द्वारा; **प्रोक्तः**=कहा गया; **साम्येन**=समत्वभाव से; **मधुसूदन**=हे मधु दैत्य के हन्ता; **एतस्य**=इसकी; **अहम्**=मैं; **न**=नहीं; **पश्यामि**=देखता हूँ; **चञ्चलत्वात्**=चञ्चलता के कारण; **स्थितिम्**=गति; **स्थिराम्**=स्थायी।

**अनुवाद**

अर्जुन ने कहा, हे मधुसूदन! आपने जिस योगपद्धति का संक्षेप से वर्णन किया है, वह मन की चञ्चलता और अस्थिरता के कारण मुझे अव्यावहारिक और अस्थायी दिखती है।।३३।।

**तात्पर्य**

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिए **शुचौ देशे** से लेकर **योगी परमः** तक जिस योगपद्धति का वर्णन किया, अर्जुन ने यहाँ उसे अस्वीकार किया है; वह अपने को इसके योग्य नहीं समझता। इस कलियुग में साधारण मनुष्य के लिए योग-अभ्यास के लिए घर त्यागकर पर्वतीय क्षेत्र अथवा वनप्रदेश में जाना सम्भव नहीं है। वर्तमान समय में अल्प आयु के लिए घोर संघर्ष चल रहा है। आजकल साधारण व्यक्ति स्वरूप-साक्षात्कार के सुगम एवं व्यावहारिक साधनों में भी गम्भीरतापूर्वक प्रवृत्त नहीं होते। फिर ऐसी कठिन योगपद्धति के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है, जो जीवनविधि, आसन, स्थान और भोगों में मन की आसक्ति को संयमित करती हो। अर्जुन में इसके अभ्यास की अनेक अनुकूलताएँ थीं; फिर भी प्रवृत्ति-मार्ग का पथिक होने से उसने इस योगविधि को असाध्य बताया। अर्जुन अपने राजकुल के योग्य